IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

बनास बेसिन (म0प्र0) के स्थलरुपों का एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ0 श्याम दत्त दूबे*

सहायक आचार्य, स्नात्कोत्तर भूगोल विभाग, मड़ियाहूँ पी.जी. कालेज मड़ियाहूँ जौनपुर।

भूमिका–

भू आकृति विज्ञान वेत्ताओं ने विभिन्न समयों में भूतल अथवा उसके किसी भाग की स्थलाकृतियों के संरचनात्मक अथवा भ्वाकृतिक आधारों पर वर्गीकरण की योजना प्रस्तुत किया (पेक्सी, 1968)। यद्यपि प्रत्येक वर्गीकरण व्यक्तिगत अनुभवों एवं विश्लेषणों पर आधारित था। वर्तमान अध्ययन क्षेत्र दकन प्रायद्वीप के उत्तर भाग पर स्थित एक अति प्राचीन दृढ़ भूखण्ड के रुप में है, जहॉ आर्कियन युग से लेकर वर्तमान काल तक विविध विवर्तनिक एवं भ्वाकृतिक प्रक्रम उत्थान, अवतलन, वलन, भ्रंशन, वंकन, संबलन, ज्वालामुखी क्रिया, अवसादीकरण, अपक्षय, सामूहिक संचलन, अपरदन, परिवहन एवं निक्षेप के रुप में सक्रिय रहे हैं। यद्यपि प्रत्येक भूगर्भिक काल में इनकी तीव्रता एवं सक्रियता में अन्तर रहा है, जिससे यहां के स्थलारुपों के विकास में सरलता की अपेक्षा जटिलता अधिक रही है तथा यह प्रदेश एक ''पालिम्पसेस्ट'' (प्राचीन पाण्डुलिपि) की तरह हो गया है जहॉ विविध कालों में सक्रिय प्रक्रमों ने स्थलाकृतिक विकास किया, उन्हे नष्ट किया एवं पुनः निर्माण किया जिसके चिन्ह एवं अवशेष यहां के अवसादों एवं संस्तरों के नीचे तिरोहित एवं सुरक्षित हैं। अध्ययन क्षेत्र के स्थलरुप मूलतः बहुचक्रीय स्थलरुप हैं जिनका वर्तमान स्वरुप विविध संरचना पर विभिन्न भूगर्भिक कालों में सक्रिय अनेक प्रक्रमों की क्रिया विधि का परिणाम है।

स्थिति एवं विस्तार–

बनास सोन की दक्षिणवर्ती प्रमुख नदी हैं जिसका उद्गम स्थल देवगढ़ उच्च भूमि की चुटकी पहाड़ी के बैरासी गॉव के भवॅरखोह में स्थित हैं तथा जिसके अपवाह क्षेत्र का विस्तार मध्य प्रदेश के सीधी और सहडोल तथा छत्तीसगढ़ के कोरिया जनवदो पर है। यह नदी कोरिया जनपद पर विस्तृत देवगढ़ उच्च भूमि से निकलकर उत्तर पश्चिम दिशा में प्रवाहित होते हुये शिकारगंज नामक स्थान पर सोन नदी से मिलती है। बनास बेसिन मुख्यतः गोडवाना शैल तंत्र पर विस्तृत है। यह बेसिन $23^0$30′10′′ उत्तरी अक्षांश से 24^0 21′20′′ उत्तरी अक्षांश एवं 81^0 4′15′′ पूर्वी देशान्तर से 82^0 4′15′′ पूर्वी देशान्तर के मध्य 3817 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर विस्तृत है। बनास बेसिन अर्ध्दशुष्क मानसूनी जलवायु प्रदेश में स्थित हैं जहॉ मध्य जून से मध्य सितम्बर के वर्षा काल में वर्ष की 90 प्रतिशत से अधिक वर्षा प्राप्त होती हैं तथा शीत एवं ग्रीष्म ऋतुएं शुष्क रहती हैं (चित्र संख्या 1.1)।

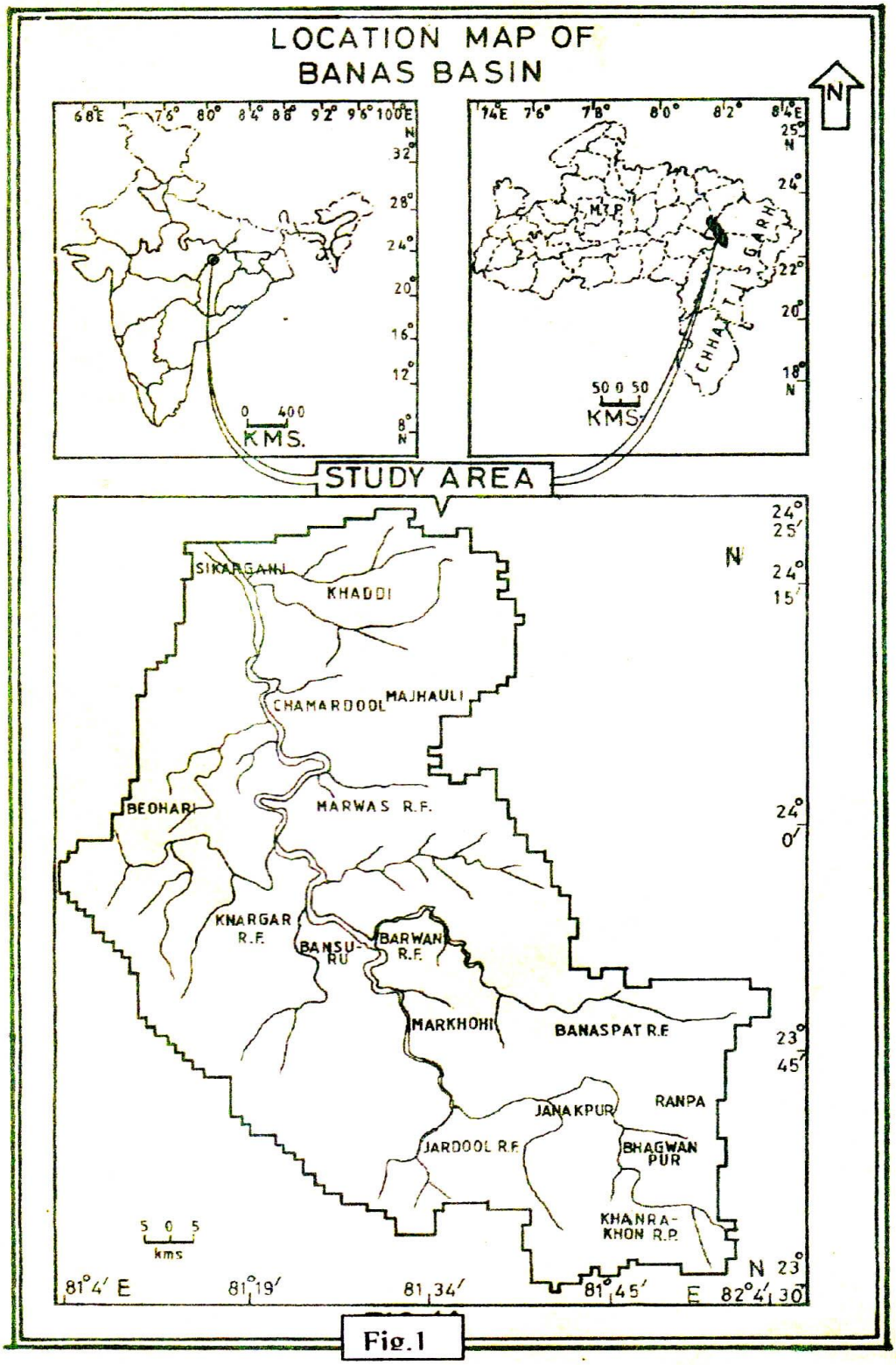

Fig.1

इस दृष्टि से यह प्रदेश स्थलाकृतिक संग्रहालय के रुप में हैं तथा यहां के स्थलरुपों का वर्गीकरण प्रस्तुत करना अतिकठिन है, फिर भी शोधकर्ता ने सघन क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर यहां के स्थलरुपों के वर्गीकरण का प्रयास किया है जो मूलतः प्रक्रम–रुप उपागम पर आधारित है :–

प्रक्रम	स्थलाकृतिक विषेषताएं
विवर्तनिक	अ. अपनति एवं अभिनति
	ब. उत्थित पठार
	स. उत्थित समप्राय मैदान
	द. कगार
	य. जल प्रपात एवं क्षिप्रिका
	र. जल विभाजक
अपक्षय	अ. टार
	ब. विदलन गुम्बद
	स. विखण्डित शेल पिण्ड
	द. विखण्डित अनावृत कटक
	य. शैल चट्कन
	र. सौर्यतापीय तनाव मूलक संधियॉ
	ल. इंसेलवर्ग
	व. घोलपटल
	क. घुलनगर्त
	ख. अपक्षयित शैल
	ग. गुम्बदीय शैल
	घ. बालुका प्रस्तर निहाय
सामूहिक संचलन	
	अ. मलवा ढाल
	ब. प्रस्तर माला
	स. पहाड़ी ढाल
	द. स्थानिक पंख
	य. अवपातन वेदिका

अपरदन

अ. नदी घाटियॉ

(i) विस्तीर्ण छिछली घाटियॉ
(ii) विसर्पी घाटियॉ
(iii) 'V' आकार की घाटियॉ
(iv) जलोढ़ पूरित घाटियॉ
(v) गार्ज
(vi) अधःकर्तित विसर्प
(vii) घाटी के अन्दर घाटी
(viii) शैल संस्तर वेदिका

ब. जलप्रपात

(i) वुहद् जल प्रपात
(ii) लघु जल प्रपात
(iii) क्षिप्रिका

स. कगार

द. विच्छेदित पहाड़ियॉ एवं कटक

य. अन्तर्सरिता क्षेत्र

र. रुण्डित स्पर

ल. घाटी खाड़ियॉ

क. प्रस्तर बंजर

ख. एकाकी पहाड़ियॉ

ग. अपक्षालित ढाल

घ. बीहड़ स्थलाककृतियॉ

(i) घाटी पार्श्व अवनालिका
(ii) पाद प्रदेशीय अवनालिका
(iii) पहाड़ी पार्श्व अवनालिका

अवसादीकरण

अ. जलोढ़ पूरित मैदान

ब. रेत वेदिका

स. प्राकृतिक तटबंध

द. अवसाद पूरित घाटियॉ

य. रेतीले जलमार्ग

र. टांड़

ल. डांड.

व. नदी वेदिका

मिश्रित एवं अवषिष्ट

अ. अवशिष्ट मृदा टीले

ब. समप्राय मैदान

स. मोनाडनाक

यहॉ इनमें से प्रमुख स्थल रुपों की उत्पत्ति, विकास, विशेषता एवं अवस्थिति की व्याख्या करने का प्रयास किया जायेगा जो पूर्णतः सघन क्षेत्र सर्वेक्षण पर आधारित है।

उत्थित समप्राय मैदान–

विवर्तनिक चक्र का सम्बन्ध पटल निरुपण से होता हैं जो भू सतह पर वलन, भ्रंशन, संवलन, ज्वालामुखी और भूकम्पीय क्रियाओं के रुप में सक्रिय होकर नवीन पदार्थो का सृजन करकें उपरदन चक्र में नवोन्मेष उत्पन्न करते हैं। अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी भाग में पूर्व कैब्रियन युग से कैम्ब्रियन तक विन्ध्यन अवसादी चट्टान विन्ध्यन सागर में जमा हुई परन्तु कालान्तर में विवर्तनिक हलचलों के कारण इनका उत्थान हुआ। कार्बनीफेरस एवं पर्मियन युगों में यहॉ गोंडवाना शैलतंत्र का जमा हुआ जबकि क्रिटैशियन युग में दकन लावा प्रवाह के कारण लावा की एक मोटी परत अध्ययन क्षेत्र पर विस्तृत हो गयी। टर्शियरी युग में इण्डियन प्लेट उत्तर दिशा में अग्रसर हुयी जिसके परिणाम स्वरुप इसका यूरेशियन प्लेट के नीचे अध्यःक्षेपण होने लगा। हिमालय के उत्थान से समीपवर्ती क्षेत्र प्रभावित हुए जिसके कारण अध्ययन क्षेत्र में तीन क्रमिक उत्थान हुए। प्रथम उत्थान के अन्तर्गत देवगढ़ पठार की रचना हुई तथा द्वितीय उत्थान से परिधीय कगार बने और तृतीय उत्थान के कारण जलोढ़ वेदिकाओं का निर्माण हुआ। अध्ययन क्षेत्र में इस उत्थान के कारण पूर्व निर्मित अपरदन सतहें ऊपर उठकर विभिन्न ऊॅचाइयों पर उत्थिसत समप्राय मैदान के रूप में व्यवस्थित हो गयीं, जिनमें स्थलाकृतिक विषम विन्यास एवं संगत शिखर तल एवं अन्तर्सरिताक्षेत्र मिलते है। अध्ययन क्षेत्र के पठारी भाग उत्थित समप्राय मैदान के रूप में हैं, जो वस्तुतः क्रिटैशियम युग के प्रारम्भ में निर्मित विश्वस्तरीय गोंडवाना सतह का ही भाग है। वर्तमान काल में क्रिटैशियस लावा अधिकांशतः अपरदित हो चुका है तथा अध्ययन क्षेत्र में बालुका प्रस्तर के शैल संस्तर इन उत्थित मैदानों पर सर्वत्र आवरण शैल के रूप में वर्तमान है।

कगार–

अध्ययन क्षेत्र एक तस्तरी सदृश्य है क्योकि बेसिन के पूरब में उच्च देवगढ़ का पठार, उत्तर और उत्तर पूरब में संक्रमण क्षेत्र के रूप में कगार विस्तृत है जो बनास बेसिन को घेरे हुए सीमान्त भाग में एक दीवाल की तरह अवस्थित है इसलिए सीमान्तीय पठार से इस कगार को पार करने वाली सरिताएं जलप्रपात, क्षिप्रिका और गहरें गार्जो का निर्माण करती हैं। इस कगार की सतही शैल संरचना बालुका प्रस्तर शैलों की है जिसके नीचे शेल एवं कहीं–कहीं मडस्टोन के शैल संस्तर शीर्ष से गिरिपदीय भाग एक आदर्श ढाल परिच्छेदिका प्रस्तुत करते हैं। जहॉ शिखरीय उत्तलता शीर्षपर, बालुका प्रस्तर पर मुक्त पृष्ठता, मध्यवर्ती भाग में सरल रेखात्मकता एवं आधारीय भाग में अवतलता का विस्तार है। कगार का लम्बवत् सम्मुख प्रायः वनस्पति विहीन है जिससे नग्न बालुका प्रस्तर एवं शेल शैलें दृष्टिगोचर होती है। जहॉ बालुका प्रस्तर आवरण के नीचे शेल की स्थिति है वहॉ भृगु के रूप में अधःकर्तित ढाल का विकास हुआ है तथा जहां कगार पर केवल कठोर बालुका प्रस्तर का ही विस्तार है वहां दृढ़ कगारी सतह विकसित हुई है जिसका ढाल 70^0 से अधिक है। इन कगारों में निरन्तर समान्तर निर्वतन हो रहा है जिससे इनका अधिकतम कोण स्थिर है क्योंकि बालुका प्रस्तर पर विकसित मुक्त पृष्ठ पर अपक्षय द्वारा विखण्डन एवं नियोजन हो रहा है तथा मलवा का सामूहिक संचलन द्वारा आधरीय भाग पर निस्कासन हो रहा है। यह कगार सामान्यतः नियमित एवं सतत् रेख के रूप में हैं जिनकी निरन्तरता कगार से उतरने वाली नदियों द्वारा भंग होती है।

जलप्रपात एवं क्षिप्रिका–

अध्ययन क्षेत्र में कगार के सहारे अनेक छोटे–छोटे 5 से 20 मीटर तक की ऊॅचाई वाले जल प्रपात पाये जाते हैं। अधिक ऊॅचाई के जल प्रपात कगार के शीर्षवर्ती भाग पर पाये जाते हैं जो 20 मीटर ऊॅचाई के है। जैसे–बेनीपुरा जलप्रपात (20 मीटर), रानीताल प्रपात (15 मीटर), 12 मीटर के दो जलप्रपात, बरैल प्रपात (15 मीटर), माटा प्रपात (6 मीटर), हररी (6 मीटर) जल प्रपात आदि है जो विविध ऊॅचाई के है। शोधकर्ता ने गहन क्षेत्र सर्वेक्षण के समय यह पाया कि यह जल प्रपात वास्तविक जलप्रपात नही हैं जबकि इनकों भारतीय सर्वेक्षण विभाग के भूपत्रकों पर जलप्रपात दर्शाया गया हैं क्योंकि इन जलप्रपातों से सरिताओं का उद्गम होता है। इनपर आक्सीडेशन और रस्टिंग के कारण तीव्र रासायनिक अपक्षय हो रहा है। धाबा ताल के पास 3, 4 एवं 5 मीटर के तीन जलप्रपात वर्तमान हैं जहां एक विच्छेदित अनावृन्त कटक अध्ययन क्षेत्र के शीर्षवर्ती भाग में स्थित है जो पूर्णतः वनस्पति विहीन है जहां एक जलस्रोत स्थित है। पहेहरा में भी एक जलस्रोत की स्थिति है।

रुण्डित स्पर–

रुण्डित स्पर शब्द का प्रयोग उन स्थल रुपों के लिए किया जाता है जो कगारों से संयुक्त किन्तु मैदानों में प्रक्षापित लम्बे सकरे कटक के रूप होते हैं तथा एकाकी अथवा समूह में मिलते हैं (सविन्द्र सिंह, 1977, डी0पी0 उपाध्याय, 1980)। अध्ययन क्षेत्र में रुण्डित स्पर कगार वाले भागों में पाये जाते है। रुण्डित स्परों की उत्पत्ति समानान्तर रूप में कगार से उतरने वाली सरिताओं के तीव्र अपरदन द्वारा होती है जो कगार की गहराई तक वर्तन करती हैं तथा अपनी घाटियों को अधिक गहरी कर देती हैं जिससे इनके मध्य का त्रिभुजाकार भाग बाहर कटक के रूप में निकला रहता है जिसे रुण्डित स्पर कहते है।

घाटी खाड़ियॉ–

अध्ययन क्षेत्र में देवगढ़ उच्चभूमि एवं सीमांतीय कगार से उतरने वाली सभी सरिताएँ कगार का तीव्र कर्तन एवं लुंचन कर रही हैं तथा कगार पर अपनी गहरी घाटियों का विस्तार कर रही हैं। जैसे–जैसे प्रपात के सहारे कगार समानान्तर रूप से पीछे हटते हैं, नदी घाटियॉ धीरे–धीरे विस्तृत होती जाती है। ज बवह पवीन आधार तल पर अपनी घाटी स्थापित कर लेती है तो उनमें पार्श्विक अपरदन होने लगता है जिससे कगार प्रदेश में घाटी चाड़ा होने लगती है। जनकपुर, से शिकारगंज तक घाटियॉ निरन्तर चौडी होती जा रही है तथा नदी घाटी का भाग एक त्रिभुलाकार निम्न क्षेत्र के रूप में कगार प्रदेश में विस्तृत हो रहा है जिसके तीन तरफ कगार की उच्च सतह दीवाल की तरह स्थित है जिसे घाटी खड़ी करते है। मवाई, ओदारी, बलवाधार आदि की कगार के नीचे स्थित घाटियॉ घाटी खांड़ियों के उदाहरण है।

मलवा ढाल–

अपक्षय चट्टानों के टूट–फूट की वह क्रिया है जिसके अन्तर्गत वह विघटन एवं वियोजन द्वारा ढीली पड़कर तथा विदीर्ण होकर अपने स्थान पर ही बिखर जाती है (सविन्द्र सिंह, 1985)। इस प्रक्रिया के भग्न चट्टान चूर्ण जब सामूहिक रूप से ढाल के सहारे ऊपर से नीचे स्थानान्तरित होते है तो उसे सामूहिक संचलन कहा जाता है। अध्ययन क्षेत्र में शिकारगंज, चमराडोल, भगवानपुर आदि स्थानों के कगारों एवं पहाड़ियों पर भौतिक एवं रासायनिक अपक्षय के कारण चट्टाने अपने स्थान पर टूट–फूट कर चट्टान चूर्ण के रूप में परिवर्तित हो गयी है जिनके कारण लघु पहाड़ियों एवं कगार के किनारे अधोवर्ती भाग में मलवा की एक चादर जमा हो गयी है।

गिजवार पहाड़, भूतहियॉ पहाड़, झण्डहवा पहाड़, खाम पहाड़, चटकी पहाड़, बलुआई पहाड़, चुनर पहाड़ आदि पहाड़ियों एवं कगारों के पार्श्वो पर मलवाढाल विकसित हुए हैं जो मूलतः अवतल एवं सरल रेखीय हैं। पहाड़ी ढालो पर मिश्रित पदार्थ, बालुका प्रस्तर के टूटे हुए टुकडे, शेल के अपक्षयित तत्व आदि पाये जाते है।

नदी घाटियॉ–

अध्ययन क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली नदियों ने निचली जलोढ़ सतह, तीव्र ढाल वाली कगारी सतह एवं मध्यम ढाल की पठारी सतह पर भिन्न–भिन्न प्रकृति एवं विशेषता की घाटियों का विकास किया है जिनमें स्थलाकृतिक विषम विन्यास मिले हैं। यहां पर विद्यमान विभिन्न घाटियों में विस्तीर्ण छिदली घाटियॉ, विसर्पी घाटियॉ, 'V' आकार की घाटियॉ, जलोढ़ पूरित घाटियॉ, गार्ज, अधःकर्तित, विसर्प, घाटी के अन्दर घाटी और शैल संस्तर वेदिका आदि प्रमुख हैं।

नदीयां वृध्दावस्था में कम गति एवं मन्द ढाल के कारण सीधे मार्ग से न प्रवाहित होकर विसर्पी मार्ग से बल खाती हुई प्रवाहित होती है जिन्हे नदी विसर्प कहते है। प्रथम चक्र में नदी चौड़े विसर्प की रचना करती है। यदि विवर्तनिक अथवा सुस्थैतिक कारणों से इस अपरदित भाग का उत्थान हो जाता है तो नदी में नवोन्मेष के कारण वह प्राचीन चौड़े विसर्प के अन्दर संकरे एवं गहरे विसर्प की रचना करती है तथा स्थलाकृतिक विषम विन्यास की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वहरवार पहाड़ी, सरवाही पहाड़ी के पास प्रवाहित होकर बनास नदी अधःकर्तित विसर्प का निर्माण कर रही है। चुल और उमरवॉ जल प्रपातों के नीचे स्थित गार्ज में प्रवाहित नदीयॉ अधःकर्तित विसर्पो की रचना कर रही हैं।

बीहड़–

अध्ययन क्षेत्र में जहॉ पर शेल शैलों के विघटन एवं वियोजन से मिट्टियों की रचना हुई हैं, वहां पर बीहड़ निर्माण की प्रक्रिया अधिक हुयी हैं। कमजोर मृदा ग्रीष्म काल में अत्यधिक ताप के कारण ढीली होकर प्रसरित हो जाती है तथा वर्षा काल में तीव्रगति से वर्षा का जल ढीली मृदा पर जलीय तूफान सदृश कार्यरत होता है, जिसके कारण धरातल पर अंगुल्याकार लघु अवनालिकाओं का विकास हो जाता हैं जिनके कारण ढीली मृदा तीव्र गति से प्रवाहित होकर नदी नालों में चली जाती है। इसी प्रकार के बीहड़ प्रदेश, महान नदी के, मौरा, रेहुरा, खाड़ी, रीमारी, वरौन, खवार आदि गॉवों में तथा ओदारी नदी के टीहरी, जयसिंह, नगर टेटकर, करली, रेमार, आदि गॉवों में वर्तमान हैं जो कगार के नीचे के जलोढ़ भागों में अधिक विकसित हुए हैं।

जलोढ़ मैदान–

अध्ययन क्षेत्र के मध्यवर्ती एवं निचले भागो में विस्तृत जलोढ़ मैदान वर्तमान हैं जहां जलोढ़ की गहराई 5 से 15 मीटर तक है। जैसे–जैसे गिरिपदीय प्रदेशो से दूर हटते जाते हैं जलोढ़ की गहराई बढ़ती जाती है। जैसे महान, मवाई, ओदारी, सिंघोर, कोरमार, झन्पार आदि नदी बेसिनों में जलोढ़ के जमाव की गहराई 02–10 मीटर तक है जिस पर रबी एवं खरीफ की फसलों का उत्पादन होता हैं। घाटी पार्श्वो, नदी वेदिकाओं, प्राकृतिक तटबन्धों एवं बीहडों द्वारा ही इनकी समांगता भंग होती है। हथवार, बोधियां, चौरी, परसिली आदि क्षेत्रों में जलोढ़ मैदानों का विस्तार अधिक है।

टांड़ एवं डांड़–

अध्ययन क्षेत्र के जिन जलोढ़ के मैदानी भागों में बाढ़ का जल प्रतिवर्ष नही पहुॅच पाता है उन्हे टांड़ कहा जाता है जबकी जो भाग नदियों के पार्श्ववर्ती भागों में स्थित हैं वहां पर बाढ़ का जल प्रतिवर्ष पहुॅचता है उन्हे डांड़ कहा जाता है। वास्तव में टांड़ का प्रयोग उच्चस्थ कृषि भूमियों के लिए किया जाता है और डांड़ का प्रयोग निम्नस्थ कृषि भूमियों के लिए किया जाता है। अध्ययन क्षेत्र में टांड़ एवं डांड़ का भूदृश्य ओदारी नदी पर लवाही, भिखुरी आदि स्थानों पर वर्तमान है।

मोनाडनाक एवं एकाकी पहाड़ियॉ–

मोनाडनाक वास्तव में अपरदन के अवशेष के रूप में कठोर स्थलीय भाग होते हैं जो समप्राय मैदान बन जाने के बाद भी लघु पहाड़ियों के रूप में यत्र–तत्र विद्यमान रहते है। किसी भी उत्थित भूभाग पर विभिन्न अपरदनात्मक प्रक्रम कार्य करना प्रारम्भ कर देते है। प्रारम्भ में उत्थान की गति तेज होती है और अपरदन की गति मन्द होती है। कालान्तर में उत्थान रुक जाता है और अपरदनात्मक प्रक्रम सक्रिय रहते हैं जिनके कारण यह उत्थित भू–भाग समप्राय मैदान में परिवर्तित हो जाता है। उस समय भी कुछ कठोर शैल रचनाएं यत्र–तत्र पहाड़ियों के रुप में विद्यमान रहती हैं जिन्हे मोनाडनाक कहा जाता है। सिलवारा पहाड़ी, गिजवारा पहाड़ी, खेन्जुआ पहाड़ी, चिरचिरा पहाड़ी, नगर सोड़ा पहाड़ी आदि मोनाडनाक के उदाहरण है।

टार्स–

अध्ययन क्षेत्र में बालुका प्रस्तर एवं ग्रेनाइट प्रमुख धरातलीय शैलें हैं जो रासायनिक एवं भौतिक अपक्षय के कारण विघटन और वियोजित होती रहती हैं। जब किसी स्थान पर विखण्डित शैल पिण्ड एक दूसरे के ऊपर पिरामिड के रूप में व्यवस्थित हो जाते है तो उसे टार्स कहते है। अध्ययन क्षेत्र के उत्तर–पूर्व स्थित एकाकी पहाड़ियों पर यह स्थलाकृतिक मिलती है। सिलवारा एवं गिजवारा गांव में आधारीय संश्लिष्ट की शैल सतह पर

अनावृत्त हैं इन पहाड़ियों पर गगन रेखीय टार्स का विकास हुआ है जहॉ पर विदलन अपक्षय हो रहा है। कहीं–कहीं यह टार्स नदी घटियों के किनारे भी पाये जाते हैं जिन्हे घाटी पार्श्व टार्स कहा जाता है।

बालुका प्रस्तर निहाय–

देवगढ़ उच्चभूमि एवं मानटोलिया, बन्द्स, भवॅरखोह, खानरा खोह, बखार पहाड़ की ऊपरी सतह एक विशिष्ट प्रकार की स्थलाकृति से युक्त है जो शुष्क प्रदेशीय छत्रक शिला के समान है। बालुका प्रस्तर शैलों के वृहद् खण्ड जड़ में बहुत पतली शैल से जुड़े रहते है। तथा इनका ऊपरी भाग अत्यन्त चौड़ा होने के कारण छतरी सदृश दृष्टिगोचर होता है। ये भूआकृतियॉ बरगद अथवा पीपल वृक्षों के सहारे पायी जाती हैं जो कि उनके निर्माण एवं विकास में सहायक हैं क्योकि ये स्वरुप लोहार के निकाय से मेल खाते हैं इसलिए इसे बालुका प्रस्तर निहाय भी कहा जाता है। ये बालुका प्रस्तर निहाय समूहों में पाये जाते हैं जो कि उत्पत्ति, विकास और ह्रास के सम्पूर्ण चक्र की द्योतक हैं। बालुका पत्थर में क्वार्ट्ज, फेल्सपार, लौह खनिज लौहांशीय संयोजकों से संयुक्त होते है जबकि निहाय के निकटवर्ती भागों में सेस्क्वीआक्साइड, कैल्सियम आक्साइड एवं कार्बन की प्रधानता होती है। बालुका प्रस्तर निहाय का विकास क्वार्ट्ज, फेल्सपार और अभ्रक खनिजों के जैव भूरासायनिक अपक्षय के कारण इनमें पड़ने वाली सन्धियों के सहारे होता है जिनमें आक्सीडेशन, जलयोजन, आधार रुपान्तर, सूक्ष्म जैवीय प्रतिक्रिया मुख्य है। दूबे (1990), अग्निहोत्री (1986) एवं नीरा रस्तोगी (1992) ने इन स्थलरुपों की विकास प्रक्रिया के विश्लेषणोंपरान्त प्रतिपादित किया कि इनका जीवन चक्र तीन अवस्थाओं में पूर्ण होता है–

(i) सर्वप्रथम बालुका प्रस्तर संन्धियों के सहारे मांस एवं लिचेन का जन्म होता है तथा जल का निस्यन्दन कार्बन से युक्त होकर उच्च कार्बोनिक एसिड को जन्म देता है। कार्बोनिक एसिड का उच्च समूहन कार्बनीकरण की प्रक्रिया को जन्म देता है तथा वर्षाकाल में कार्बनीकरण, ओषजीकरण, जलयोजन, दीमक एवं जलीय प्रक्रमो के सहयोग से बालुका प्रस्तर के वृहद पिण्ड गोलाकार हो जाते हैं।

(ii) रासायनिक अपक्षय बालुका प्रस्तर की संधियों एवं संस्तर तलो के सहारे सक्रिय रहता है जिससे यह गहराई तक अपक्षयित हो जाती है। अपक्षयित महीन पदार्थो पर वनस्पतियां उगती है तथा उनकी जड़े संधियों को चौड़ा कर जैव–रासायनिक अपक्षय में वृध्दिकर देती है। वृष्टि धुलन द्वारा अपक्षयित पदार्थ हटा लिये जाते हैं तथा दीमक बालुका प्रस्तर के वृहद आधार को सॅकरा करते है। बरगद, पाकड़, पीपल आदि वृक्षों की शाखायें एवं पत्तियॉ इन पिण्डों को छाया प्रदान कर शीत वातावरण प्रदान करती हैं जिससे ओषणीकरण में वृध्दि हो जाती हैं तथा ऊपरी भाग छत की तरह चौड़ा होकर लटकने लगता है।

(iii) आधार के निरन्तर सॅकरे होने, लटकती वृत्तीय छत के चौड़ी रहने तथा संधियों से अपक्षयित पदार्थ के निष्कासन तथा संधियों के चौड़ी होने से वृक्ष का संरक्षण कम होने के कारण लटकती छत ध्वस्त हो जाती है तथा इस स्थलाकृति का जीवन चक्र पूर्ण हो जाता है।

References:-

1- Dubey Shyam Dutt- 2004 Drainage Characterstics and Terrain Pattern of Banas Basin : A Geomorphic study – Unpubulished Ph.D Thesis. V.B.S. Purvanchal University jaunpur.

2- Holmes, C.D. 1978: Equilibrium in humid- climate physiographic processes American Journal of science, 262,pp.436-445:

3- Hanwell, J.D. and Newson M.D.1973: Techniques in physical Geography Macmillon,pp.109,-156

4- Jerf, 1949:- A staudy of soil formation in drainage Basin area.

5- Pandey P.and Rai.R.K., 1981 Influences of Land forms in Location and Distribation of Rural Settlement – Bational Geographer Vol.16.No.2 PP, 99-105.

6- Rai Ekta 2002, Drainage Characterstics and Terrain Pattern of teiran Basin. A Geomorphic study, unpubl.shed Ph.D. Thesis, V.B.S.P.U. Jaunpur

7- Singh Savindra 1978:A Geomorphological study of small Drainage Basin Ranchi plateau.D.phil Thesis Allahabad University Allahabad

8- Sukla JP 1995 Drainge Characterstice on Terrain Pattern analysis of Kanhar Basin Unpublided Ph.D. Thesis V.B.S.P.U. Jaunpur

9- Upadhyay D.P. 1980 A Morphometric study of small Drainage Basin of S.E. Choota Nagpur region India. Unpulished D.Phil Thesis. Deptt. Gego Allahabad University Allahabad.